Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

रघुवीर सहाय की कविता में राजनैतिक यथार्थबोध

डॉ0 भूपेन्द्र सिंह
सहायक प्राचार्य, हिन्दी, अवध बिहारी संस्कृत महाविद्यालय, रहीमपुर, खगड़िया, बिहार,
(कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत, विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार)

Article Info
Volume 5, Issue 6
Page Number : 99-103
Publication Issue :
November-December-2022
Article History
Accepted : 01 Dec 2022
Published : 20 Dec 2022

शोधसारांश – रघुवीर सहाय की कविताओं में कथ्य की ऐसी तात्कालिकता, अनुभूति का ऐसा पैनापन और अभिव्यक्ति की ऐसी तनावपूर्ण मुद्रा मिलती है जो उन्हें अन्य सभी नये कवियों से अलग करती है। राजनीतिक सन्दर्भों को जितना काव्योपयोगी रघुवीर सहाय ने बनाया है उतना कम अन्य कवियों ने। राजनीति उनके काव्य में कथन या विवरण के रूप में नहीं आती, वह संवेदना के रूप में उपस्थित होती है।

मुख्य शब्द– रघुवीर सहाय, कविता, राजनीतिक, अनुभूति, काव्य।

रघुवीर सहाय के संकलन आत्महत्या के विरूद्ध की कविताओं में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कविताओं के रचनाकाल में, जो सातवें दशक के प्रारंभ से लेकर 1967 तक का चुनाव काल है, इसमें रघुवीर सहाय के लिए राष्ट्रीय राजनीति अचानक बहुत प्रमुख हो जाती है और वे उसी को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाते हैं। इसका प्रमुख कारण भारतीय स्वाधीनता और संसदीय जनतंत्र से होने वाला उनका मोहभंग है। इनके मोहभंग होने का मुख्य दो कारण है। पहला कारण 1962 के चीनी आक्रमण के साथ नेहरू–युग से मोहभंग होना और 1967 आते–आते भारतीय समाज के आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध का तीव्र हो जाना तथा दूसरा रघुवीर सहाय का पत्रकारिता को आजीविका के रूप में अपनाना भी उनकी राजनीतिक दृष्टि को बहुत सचेत बना देता है। उन्होंने इसे स्वीकार भी किया है कि ''राजनीति से मैंने अपने साहित्य को बहुत दिया– खासतौर से उस दौर में जब मैं दैनिक अखबार में था।''

रघुवीर सहाय की राजनीति एक अमूर्त राजनीति नहीं है बल्कि वह बहुत ही ठोस और यथार्थ को अपने में समाहित किए हुए जीवन्त राजनीति का चित्रण है। उनकी कविताओं में सातवें दशक का राजनीतिक मोहभंग बहुत ही त्रासद और तीक्ष्ण रूप में चित्रित हुआ है। उन्होंने एक नागरिक की स्वाधीनता के मर्म को, संसदीय जनतंत्र की विवशता को, बहुदलीय प्रणाली एवं बालिग मताधिकार और स्वाधीन भारत में आम–जन की स्थिति को उसकी सम्पूर्ण विसंगतियों, विडंबनाओं और व्यर्थताओं के साथ खोलकर रख दिया है। अपने समय और समाज में एक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता को बचाये रखना भी संघर्षपूर्ण है। इसी स्वतंत्रता की दुर्दशा को रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में व्यक्त किया है–

खण्डन लोग चाहते हैं या कि मण्डन
या फिर केवल अनुवाद लिसलिसाता भक्ति से
स्वाधीन इस देश में चौंकते हैं लोग

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

एक स्वाधीन व्यक्ति से।[1]

आज के इस राजनीतिक परिदृश्य के बदलते वातावरण में व्यक्ति का व्यक्तित्व और उसकी नैतिक विचारधारा में अन्तर बढ़ता जा रहा है कि वह स्वतंत्रता का मूल्य ही भूलता जा रहा है। ऐसी स्थिति में एक कवि की विडंबना यह है कि–

कुछ भी लिखने से पहले हँसता और निराश होता हूँ मैं
कि जो मैं लिखूँगा वैसा नहीं दिखूँगा।[2]

ऐसे समाज में एक व्यक्ति की ऐसी स्थिति नहीं रह गयी है कि वह अपने भावों और विचारों के अनुसार आचरण कर सके और न ही व्यक्ति में उसका साहस ही रह गया है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविता 'मेरा प्रतिनिधि' में भारतीय संसद का जो चित्र खींचा है, वह विसंगत और विडंबनापूर्ण ही नहीं, अपितु त्रासद और वीभत्स भी है–

सिंहासन ऊँचा है सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुँह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की–सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष।
सुनो वहाँ कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करुण कथा।
हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है।[3]

मनुष्य जीवन की नियति को उसके समूचे विस्तार में देखना और प्रासंगिक बनाये रखना रघुवीर सहाय के कवि–कर्म का केन्द्रीय तत्त्व है। उनके दोनों आरंभिक संकलन 'सीढ़ियों पर धूप में' तथा 'आत्महत्या के विरुद्ध' इस दृष्टि से नयी कविता की सर्वथा नयी क्षमता के सूचक हैं। 'सीढ़ियों पर धूप में' के अनुभव–चित्र अपेक्षया कोमलतर हैं, जबकि दूसरे संकलन में तो समस्त समकालीन जीवन राजनीति के अनेक विकट रूपों को साथ लिए अंकित हुआ है।[4]

यह कविता हमें मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' के कलाकार की याद दिलाती है। वह अपनी वाणी से व्यवस्था का विरोध करता था और अंत में जब जुल्म सहते–सहते वह थक गया, तो अपनी सीलबंद कोठरी से बाहर आकर मशाल जुलूस में शामिल हो गया और पुलिस की गोली से मारा गया।

मारो गोली, दागो स्याले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर
छुपे तरीके से
हम जा रहे थे कि
आधी रात अँधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खतम करो एकदम।[5]

रघुवीरसहाय नयी कविता दौर के ऐसे कवि थे जिनकी काव्य–यात्रा का प्रारंभ बच्चन की वेदना से होता है और बाद में गिरजा कुमार माथुर के सफल–असफल रंग संयोजन ने उन्हें कला के प्रति सजग बनाया। वे उस समय के अपने ही रंग–ढंग में रचे–बसे कवि थे जिसके कारण उन्हें न तो नई कविता के कवियों ने स्वीकार किया और न ही प्रगतिवादियों ने अपनाया। मसलन रघुवीर सहाय को ही नई कविता से भी शिकायत थी और प्रगतिशील कविता से भी, इसलिए नई कविता–आन्दोलन और प्रगतिशील आंदोलन ने उन्हें स्वीकार नहीं किया और न उन्होंने उनसे अपने आप को कभी भी जोड़ा।

''देश में राजनीतिक क्रान्ति तो हुई किन्तु वह सफल नहीं हो पायी। राजनीतिक क्रान्ति के फलस्वरूप काव्य का कायाकल्प हुआ किन्तु क्रान्ति की सफलता के कारण आचार्य बाजपेयी ने जिन वीर गीतों वीर प्रबन्धों की सम्भावना प्रकट की थी वह अधूरी रह गयी। राजनीतिक क्रान्ति की असफलता के फलस्वरूप देश में 'विद्रूप' विडम्बना और लाचारी का जो वातावरण है रघुवीर सहाय की कविता उसका अच्छा उदाहरण है।''[6]

इस कविता में रघुवीर सहाय ने आजादी को बहुत अच्छे ढंग से पारिभाषित किया है। 'मैं' कहता है–

बीस वर्ष
खो गये भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में
वह
अपने बचपन की
आजादी
छीनकर लाऊँगा।[7]

इस देश में जन–साधारण की स्थिति ऐसी हो गयी है कि वह सिर्फ एक 'मतदाता' बनकर रह गया है। 'अपने आप और बेकार' शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय ने मतदाता की असहायता का वर्णन किया है–

देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने दुबक ही तो सकता हूँ
सब लोग जो कुछ रचाते हैं उसमें

केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूँ

'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता में रघुवीर सहाय ने स्वातंत्र्योत्तर भारत का जीवन्त चित्रण किया है, जिस पर अनेक चित्र आते और गुजरते जाते हैं, कभी मंद और कभी तीव्र गति से। यह सारे चित्र स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक और राजनीतिक जीवन के पाखंड, स्वार्थपरता, अंतर्विरोध, हताशा और विद्रूपता को उजागर करते हैं। ''रघुवीर सहाय के लिए अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी या भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा का सवाल भी एक राजनीतिक सवाल है, इसलिए उन्होंने न केवल 'हमारी हिन्दी'– जैसी कविता लिखी है, जिसमें बिंब–प्रतिबिंब–भाव से हिन्दी और एक निम्नमध्यवर्गीय स्त्री का वर्णन है और उस वर्णन के माध्यम से हिन्दी की वर्तमान स्थिति से तुष्ट रहने और तुष्ट रखने की आलोचना है, बल्कि अन्य कविताओं में भी हिन्दी का जिक्र किया है। इस कविता में भी उन्होंने व्यंग्यपूर्ण ढंग से कहा है कि हिन्दी की दोनों ओर से हत्या की जा रही है।''[8]

हिन्दी की माँग
अब दलालों की अपने दास–मालिकों से
एक माँग है
बेहतर बर्ताव की
अधिकार की नहीं
वे हिन्दी का प्रयोग अंग्रेजी की जगह
करते हैं
जबकि तथ्य यह है कि अंग्रेजी का प्रयोग
उनके मालिक हिन्दी की जगह करते हैं
दोनों में यह रिश्ता तय हो गया है।[9]

रघुवीर सहाय का मानना है कि संसदीय जनतंत्र और उसकी संस्थाओं का नैतिकतापूर्ण उपयोग होना चाहिए। जिस प्रकार संसदीय जनतंत्र जनता के माध्यम में लाया गया है, उसी प्रकार उसे जनता के हित में सक्रिय रहना चाहिए। वे कभी भी भारतीय जनतंत्र की विकृतियों और पाखंड को देखकर दुखी और क्षुब्ध होते हुए भी निराश नहीं होते हैं। तमाम खीझ और व्यंग्यविद्रूप के बीच हम उनमें विरोध की एक चेतना भी पाते हैं। आज के जनतंत्र में सामान्य मनुष्य 'हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द' झेल रहा है।

कुछ होगा कुछ होगा, अगर मैं बोलूँगा
न टूटे, न टूटे तिलिस्म सत्ता का
मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा, टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट, मत झूठमूठ, अब मत रूठ
मत डूब, सिर्फ टूट जैसे कि परसों के बाद
वह आया, बैठ गया आदतन एक बहस छेड़कर

गया एकाएक बाहर जोरों से नकली दरवाजा भेड़कर
दर्द–दर्द मैंने कहा–क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दरजा नीचे रहने का दर्द।[10]

कवि न केवल अपनी कायरता से छुटकारा पाना चाहता है, बल्कि वह स्थितियों से ऊबने, रूठने और मन के डूबने अर्थात निराश होने के खिलाफ है।

''रघुवीर सहाय की कविताओं में कथ्य की ऐसी तात्कालिकता, अनुभूति का ऐसा पैनापन और अभिव्यक्ति की ऐसी तनावपूर्ण मुद्रा मिलती है जो उन्हें अन्य सभी नये कवियों से अलग करती है। राजनीतिक सन्दर्भों को जितना काव्योपयोगी रधुवीर सहाय ने बनाया है उतना कम अन्य कवियों ने। राजनीति उनके काव्य में कथन या विवरण के रूप में नहीं आती, वह संवेदना के रूप में उपस्थित होती है।''[11]

सन्दर्भ सूची –

1. रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, सं0 सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 47।
2. वही, पृ0 47।
3. वही, पृ0 64–65।
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 237।
5. प्रतिनिधि कविताएँ, मुक्तिबोध, सं0 अशोक बाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 138।
6. नयी कविता का समाजशास्त्र, डॉ0 मनोज कुमार सिंह, तथागत प्रकाशन, सारनाथ, वाराणसी, पृ0 81।
7. रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, सं0 सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 66।
8. रघुवीर सहाय, डॉ0 नन्दकिशोर नवल, प्रतिनिधि आधुनिक कवि, सं0 डॉ0 चन्द्र त्रिखा, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृ0 282।
9. रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, सं0 सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 122।
10. वही, पृ0 59।
11. नयी कविता का समाजशास्त्र, डॉ0 मनोज कुमार सिंह, तथागत प्रकाशन, सारनाथ, वाराणसी, पृ0 78।